“पूर्व-मध्यकालीन भारतीय समाज”

Mandip kumar chaurasiya

Assistant professor

Dept. of A.I.H. & Archaeology

Patna university, patna-800005

M.A. Semester - IV

Paper – 204(6) Ancient Indian Society (E.C.)

भारतीय संस्कृति में इस युग का समाज एक विशेष स्थान रखता है। उसी संस्कृति के ऊपर वर्तमान हिन्दू समाज का संगठन हुआ है। हिन्दू समाज सर्वदा से वर्णव्यवस्था की सुदढ़ नीव पर खड़ा है किन्तु समय की गति के साथ सामाजिक व्यवस्था में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है । जो सामाजिक नियम-उपनियम पूर्वमध्यकाल में तैयार किए गए थे उसी के बल पर आधुनिक हिन्दू समाज का निर्माण किया गया है। तत्कालीन साहित्य का इतिहास यह बतलाता है कि हिन्दू समाज तथा धर्म के मूल स्रोत स्मृति ग्रंथों की रचना इसी काल में हुई थी। उन्हीं के अध्ययन से वर्तमान हिन्दू समाज की रूपरेखा समझ में आ जाती है। स्मृति ग्रंथों के अवलोकन से इस कथन की सत्यता सिद्ध हो जाती है। जो निबन्ध लिखे गए उनमें समाज की स्थिति पूर्ण रूप से बतलायी गयी है। वहां जातियों में अनेक उप-जातियों की उत्पत्ति तथा प्रत्येक की सीमा का दिग्दर्शन कराया गया है । पूर्वमध्य युग के उत्कीर्ण लेखों में भी साहित्यिक उल्लेखों का साक्षात् उदाहरण उपस्थित किया गया है। इस तरह वर्णाश्रम धर्म की गति का एक चित्र हमें मिलता है। इतिहास के जानने वालों से यह बात छिपी नहीं है कि हर्ष के मृत्यु पश्चात् सातवीं सदी से भारत पर मुसलमानों का

आक्रमण होने लगा था। परन्तु हिन्दू समाज पर उसका प्रभाव विशेष रूप से पड़ न सका। उस युग में समाज का संगठन दृढ़ होता गया और सीमित क्षेत्र में लोग रहने लगे। मुसलमानों के कारण समाज में संकीर्णता तथा जटिलता आती गयी । आधुनिक हिन्दू समाज पूर्व मध्यकालीन समाज का प्रतीक माना जा सकता है।

स्मृतिकारों ने वर्णव्यवस्था को वैज्ञानिक सिद्धान्त पर चार अंगों में विभाजित किया है। पूर्ण विकसित समाज में चार वर्णों की कल्पना की गयी है- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र । पूर्वमध्य युग में वर्गों की. वह आदर्श स्थिति नहीं पायी जाती । अरब लेखकों ने तो सात जातियों का वर्णन किया है जो सर्वथा हमारे वर्ण से भिन्न है। पूर्वमध्य युग के लेखों में राजाओं को वर्णाश्रम व्यवस्था का पृष्ठपोषक अथवा वर्णाश्रम धर्मपालक कहा गया है, यानी तत्कालीन राजाओं का ध्यान इस ओर था। यद्यपि हर्ष के बाद पाल युग तक बौद्धधर्म का प्रचार बना रहा, पर इसका प्रभाव हिन्दू समाज पर नहीं के बराबर था। जाति-भेद न मानने पर भी पाल नरेशों के शासनकाल में वर्णव्यवस्था ज्यों की त्यों बनी रही। पाल लेखों में धर्मपाल तथा विग्रहपाल राजा जाति व्यवस्था के सुरक्षित करने वाले शासक कहे गये है। उड़ीसा प्रांत का राजा क्षेमांकरदेव "वर्णाश्रम परमोपासक" पदवी से विभूषित किया गया है । आश्चर्य तो यह है उत्तरी भारत में जहाँ बौद्ध धर्मानुयायी अधिक संख्या में बसते रहे. वहीं वर्णव्यवस्था अक्षुण्ण रूप से बनी रही । जहाँ वैष्णव या शैवमत का प्रचार था, वहां वर्ण विरोध का कोई प्रश्न ही नहीं था। प्रतिहार, परमार तथा चन्देल प्रशस्तियों में वर्णाश्रम व्यवस्था का उल्लेख नहीं मिलता; इससे प्रकट होता है कि दसवीं सदी तक उत्तरी भारत में हिन्दू समाज चार वर्गों में विभक्त था जिसकी स्थिति प्राचीन वर्णव्यवस्था से अभिन्न थी। दसवीं सदी के बाद इस व्यवस्था में परिवर्तन आने लगा। किसी को मूल सिद्धान्त मानने में आपत्ति नहीं थी परन्तु कार्यरूप में भेद उत्पन्न हो गया था। कितनी नई उपजातियाँ समाज में उत्पन्न हो गयीं। इस तरह समाज का रूप पूर्वमध्य युग में परिवर्तित हो गया।

उपजातियों की उत्पत्ति के कई कारण माने गये हैं। सब से पहला कारण जीविका सम्बन्धी है जिसके विभिन्न ढंगों ने जाति को उपजाति में विभाजित कर दिया। पैतक कला को बालक सीखने लगे और भविष्य में उसी नाम से पुकारे गये। लकड़ी

का काम करने वाला बढ़ई, चर्म का काम करने वाला चर्मकार तथा लोहा से सामान तैयार करने वाला लोहकार विख्यात हुए । विवाह के कारण भी उपजातियां हो गयीं । अनुलोम तथा प्रतिलोम से कई वर्ण उत्पन्न हो गए। धर्म ने भी इस कार्य में हाथ बटाया था। भिक्षु मठाधीश संत हो गए और बिहार की सारी सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। शूद्र वर्ण भी सत-असत भाग में विभाजित होने के कारण अन्त्यज पंचम वर्ण के नाम से प्रसिद्ध हुए । इस युग में ब्राह्मणों के महासामंत होने का भी प्रमाणा मिलता है। पालवंशी नरेशों के शासन में ब्राह्मण सेनापति का काम करने लगे थे। ह्वेनसांग के कथनानुसार समतट का राजा ब्राह्मण था। काबुल में ब्राह्मण शाही का पता सिक्कों से लगता है। कहने का तात्पर्य यह है कि शासन में ब्राह्मण भी क्षत्रियों की तरह भाग लेते रहे । खेती के कार्य करने का वर्णन विदेशी यात्रियों ने किया है। इस युग के अनेक दानपत्रों में खेत ब्राह्मणों को दान में देने का वर्णन मिलता है। उसमें स्पष्ट उल्लिखित है कि इतनी भूमि (हल माप माना गया है) जोती जायगी। इस से प्रकट होता है कि ब्राह्मण खेती करने लग गए थे। कई लेखों में लिखा है कि चंगी वसूल करने का कार्य अमुक ब्राह्मण को दिया गया था। इन सब बातों का निष्कर्ष यह नहीं है कि अधिकतर ब्राह्मण अध्ययन से विमुख हो गए थे। तत्कालीन दानपत्रों में वेदों के शाखाओं के नाम आते हैं जिससे प्रकट होता है कि अमुक ब्राह्मण अमुक शाखा का अध्ययन या अध्यापन करता था। एक स्थान पर ब्राह्मण द्वारा सामवेद, मीमांसा तथा तर्कशास्त्र के अध्यापन का विवरण मिलता है । इस प्रकार अनेक उपजातियां हो जाने पर षटकर्म के अतिरिक्त ब्राह्मणों की अन्य जीविका के साधन ढूढ़ना स्वाभाविक था।

ब्राह्मणों के पश्चात् क्षत्रियों को समाज में स्थान दिया गया है। स्मृतिकारों ने यद्यपि इस वर्ग के लिए क्षत्रिय शब्द का प्रयोग किया है किन्तु लेखों में इन्हें राजपूत शब्द से वर्णित किया गया है । गुर्जर प्रतिहार, चन्देल तथा गहड़वाल लेख क्षत्रिय वंश से ही इनकी उत्पत्ति बतलाते हैं। राजपूत उन्हीं प्राचीन क्षत्रियों के उत्तराधिकारी थे। स्थान विशेष में निवास करने के कारण उस देश का नाम राजपुताना पड़ा। इस पूर्वमध्यकाल में क्षत्रियों की प्रधानता हो गयी। उनमें कुछ तो ब्राह्मणों से भी अधिक विद्वान् थे। परमार राजा भोज तथा गहड़वाल नरेश गोविन्द चन्द्रदेव बड़े प्रसिद्ध

पंडित हो गए हैं। विद्वानों के आश्रयदाता की सूची में तो अनेक क्षत्रिय राजा रक्खे जा सकते हैं। इस तरह इस युग में समाज के नेता होने का भार ब्राह्मणों के कंधों से हट गया था। राजपूतों की मान्यता ब्राह्मणों के सदृश होने लगी थी। शासक होने के अतिरिक्त क्षत्रिय कृषिकार्य भी करते थे। पराशर ने भी ब्राह्मण और क्षत्रिय के' कृषक होने की बात लिखी है। इस प्रकार क्षत्रिय का एक समूह कृषि कार्य करता और ऊँचे प्रतिष्ठित वर्ग शासन के कार्य में लगा रहता था। एक १२वीं सदी के लेख में दानग्राही क्षत्रिय सामंत का उल्लेख मिलता है। चन्देल लेख में वर्णन आता है कि एक सामंत के पिता म्लेच्छों से युद्ध में मारा गया था, इसलिये क्षत्रिय होते हुए भी उसे दान देना उचित समझा गया । इसमें वह राउत्त कहा गया है: सम्भवतः राउत्त उन लोगों को कहा जाता था जो राज्य से हटा दिए गए: थे। वही जाति बुंदेल खण्ड तथा उत्तर प्रदेश में निवास करती थी। इस तरह की ३६ क्षत्रिय उपजातियों का नाम मिलते हैं।

वैश्यों के विषय में विशेष कहना सम्भव नहीं । अहिंसा के पालन करने वाले लोग खेती तथा पशुपालन से विमुख हो गए। व्यापार में इन्होंने असो-मित उन्नति की । पूर्वमध्यकालीन लेखों में व्यापारिक संस्था-श्रेणी तथा उसके कार्य का वर्णन मिलता है। धीरे धीरे शासन कार्य में भी श्रेणी भाग लेना था,.. इस कारण समाज में वैश्यों का आदर बढ़ता गया। द्विज में इनको स्थान पहले से ही मिल चुका था।

हिन्दू वर्ण व्यवस्था में कायस्थ का नाम प्राचीन समय में नहीं मिलता, जो इस युग में विशिष्ट जाति के रूप में वर्तमान थे। काणे के मतानुसार छठी सदी से पूर्व धर्मशास्त्रों में कायस्थ का नाम नहीं आता परन्तु पिछली स्मृतियों में इनका नाम मिलता है । उशनस तथा वेदव्यास स्मृति में कायस्थ के जाति के रूप में उल्लिखित किया गया है । लेखों में लेखक के पद पर कार्य करने वाला व्यक्ति कायस्थ कहलाता था । उसके अतिरिक्त गुणधर ताम्रपत्र से पता चलता है कि सैनिक मंत्री लोकनाथ कायस्थ कहा गया था। किन्तु साहित्य, धर्मग्रंथ (मिताक्षरा में) तथा लेखों में लेखक के काम करनेवाले को कायस्थ कहते थे जो शनैः शनैः समूह और तत्पश्चात् जाति के रूप में आ गया । ८वीं सदी तक कायस्थ कर्मचारी के लिए प्रयुक्त होता रहा। बाद में १२वीं शताब्दी तक कायस्थ एक जाति के रूप में समाज में आ गये थे ।

इनका द्विज से कोई सम्बन्ध स्थापित न हो सका था, इसी कारण वेदव्यास ने कायस्थ की गणना शूद्रों में को है।

वणिक किरात् कायस्थ मालाकार कुटुम्बिनः

एते चान्ये च बहवः शूद्रा भिन्ना स्वकर्मभिः ।

(वेदव्यास स्मृति १, १०)

कायस्थ को एक स्वतंत्र जाति मानना ही युक्तिसंगत होगा। विभिन्न स्थानों में निवास करने के कारण उसमें उपजातियाँ पैदा हो गयीं। गौड़ (बंगाल.) के निवासी गौड़ कहलाए, तो मथुरा से स्थानान्तरित होने पर माथुर नाम से प्रसिद्ध हुए। वास्तु से उत्पत्ति के कारण श्रीवास्तव कहलाए। अनुलोम विवाह के कारण उत्पन्न अमवष्ट कहलाए। इस तरह पूर्वमध्य युग के अन्त तक कायस्थ जाति की अनेक उपजातियाँ हो गयी थीं।

प्राचीन वर्णव्यवस्था में शूद्र चौथी जाति मानी जाती रही जिनका सेवा करना ही मुख्य कार्य था। पिछली स्मृतियों के अध्ययन से पता चलता है कि विवाह के कारण तथा कर्मानुसार समाज में शूद्रों की कई उपजातियाँ हो गयी थीं।

वर्धकी नापितो गोप आशाभः कुम्भकारक:

एते चान्ये च बहवः शूद्रा भिन्ना स्वकर्मभिः

(वेदव्यास स्मृति १-१०)

परिस्थिति के अनुसार विभिन्न कार्य जीविका के साधन हो गए। कृषि को सूद्रों ने अपनाया। कुछ गन्दे कार्य के करने वाले अस्पृश्य कहलाए और उन अन्त्यजों को ग्राम के बाहर स्थान दिया गया। उन्हें पंचम वर्ण के नाम से भी पुकारते हैं। ब्राहमण और वैश्य में अनुलोम विवाह से उत्पन्न संतान चाण्डाल कहलाए।

ब्राहमण्यां शूद्र जनित चाण्डालो धर्मवजितः ।

(वेदव्यास १-१०.)

मुसलमान लेखक अलबेरूनी ने भी उल्लेख किया है कि पंचम वर्ण गाँव के बाहर रहता था और उसमें डोम, चमार, नट, आदि का उल्लेख किया है। अतः निष्कर्ष

यह निकलता है कि पंचम वर्ण की उपजातियाँ (अन्त्यज कर्म के अनुसार) अनेक नाम से सम्बोधित की जाती रहीं। चहमान लेख में भाट, बनजारा, अभोटी तथा भट्टारक के नाम मिलते हैं जिन्हें शूद्रों की उपजातियां मानते थे । भाट तो पूर्वमध्यकाल में शासकों की काव्यमय प्रशंसा करवा ध्या । बनजारा बैलों पर सामान ढोता था। मंदिर में शूद्र श्रेणी के नौकर अभोटी कहलाते रहे । सुनार को जोधपुर लेख में शूद्र कहा गया है परन्तु वर्तमान काल में वह वैश्य समझे जाते हैं। सम्भवतः ऊँचे वर्ग के लोग आभूषण तैयार कराने के लिये सुनार से अधिक सम्पर्क में आए, जिस कारण अस्पृश्यता उनसे हटा ली गयी और वैश्य श्रेणी में रख दिए गए।

इसके अतिरिक्त लेखों में अनेक जंगली जातियों का उल्लेख पाया - गया है जो राजाओं से भी लड़ते रहे। पुलिंद तस्कर आदि के नाम लिए जा सकते हैं। पहाड़पुर से जो मिट्टी की चौकोर वस्तुएँ मिली हैं उनमें शारीरिक बनावट तथा पहनावा जंगली जातियों के समान है।

सामाजिक संस्कार

पूर्वमध्यकाल में अनेक उपजातियों के कारण समाज में भी भिन्नता आने लगी थी। इस युग के दानपत्रों में संस्कारों के नाम यथास्थान आ जाते है। प्रशस्तियों में जातकर्म, नामकरण, उपनयन, सामाजिक संस्कार विवाह तथा श्राद्ध के नाम आते है। नामकरण तथा श्राद्ध के समय भूमिदान में दी जाती थी। पित"पक्ष के आमावश्या को दान देने का अनेक स्थानों पर वर्णन आता है। लेखों में इसका नाम पर्वण श्राद्ध मिलता है। अतएव जन्म से मृत्यु पर्यन्त मुख्य संस्कारों का वर्णन लेखों में पाया जाता है।

समस्त संस्कारों में विवाह प्रवान माना गया है। स्मृतिग्रंथों में इस विषय पर अत्यधिक विचार किया गया है। पुराने समय में सपिण्ड कन्या से विवाह वजित था पर पूर्वमध्य युग में सगोत्र तथा सप्रवर में भी विवाह अमान्य हो गया जो आज भी समाज में प्रचलित है। सवर्ण विवाह में मत“भेद न होने के कारण इस काल में

नाना प्रकार के विवाहों का उल्लेख लेखों में नहीं मिलता किन्तु अन्तर्जातीय विवाह का वर्णन स्थान स्थान पर मिलता है । ब्राह्मण अन्य वर्ण की कन्या से अनुलोम विवाह करता रहा। एक प्रशस्ति में वर्णन आता है कि ब्राह्मण हरिश्चन्द्र ने ब्राह्मण कन्या के अतिरिक्त क्षत्रिय कन्या से भी विवाह किया था। पाल तथा सेन लेखों में ऐसे उल्लेख मिलते हैं । शूद्र कन्या से अनुलोम विवाह कलि वर्ण्य माना गया है ।

पूर्वमध्यकाल में बहुपत्नीव्रत के अनेक उदाहरण मिलते हैं। दो कन्याओं से विवाह की बात साधारण मालूम पड़ती है जिसका वर्णन लेखों में भरा पड़ा है। गहड़वाल राजा गोविन्दचन्द्र की चार पत्नियां थीं तथा गांगेयदेव चेदि की सौ स्त्रियाँ थीं। उस सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है कि राजा सभी को लेकर प्रयाग गया वहाँ उसके मरने पर स्त्रियाँ सती हो गयीं।

<u>भोजन तथा वस्त्राभूषण</u>

अन्तर्जातीय विवाह के साथ भोजन का भी प्रश्न उठाया जा सकता है। ब्राह्मण अन्य जातियों का भोजन या जल नहीं ग्रहण करता था। जो लोग

चाण्डाल का पानी पीते थे उनके लिए प्रायश्चित्त का विधान भोजन तथा स्मृति ग्रंथों में पाया जाता है। इस युग के लेखों में गोधूम, वस्त्राभूषण चावल तथा फल के नाम बार बार आते हैं। इसके साथ माँस मछली तथा शराब के प्रयोग का भी उल्लेख मिलता है। अल्हण देवी के एक लेख में ब्राह्मण के मांस भक्षण का उल्लेख मिलता है। बंगाल में शक्ति मत के मानने तथा मंत्रयान के प्रचार के कारण मांस मछली खाने का रिवाज चला आ रहा है। चर्यापार के अनुसार ९वीं सदी में शराब पीने की प्रथा वर्तमान थी और स्त्रियाँ शराब बेचा करती थीं। प्रतिहार बाउक के लेख में वर्णन आता है कि ब्राह्मण शराब पीने से विमुख हो गए थे किन्तु क्षत्रिय लोग सुरापान के लिए प्रसिद्ध थे। अरब के मसलमान यात्रियों ने इसी का समर्थन किया है। यहाँ तक कि सियादोनी के लेख में दान के प्रसंग में शराब का उल्लेख किया गया है। यह कहना कठिन है कि किस वर्ण के लोग अधिक शराब पीते थे पर सर्वसाधारण के

लिए शराब बाजार में बेची जाती थी। उसके बेचनेवालों पर कर लगाया जाता था। स्मृतिग्रंथों के अध्ययन से पता लगता है कि आचार की शिथिलता और बाहरी प्रभाव के कारण जनसाधारण में अपेय तथा अखाद्य वस्तुओं का प्रयोग होने लगा था। शंखलिखित ने इनके दोषों के निवारण के लिए ब्रत करने का विधान किया है। सम्भवतः प्रायश्चित्त विधान के कारण समाज में मांस मदिरा का प्रयोग सरल हो गया था। -

जहाँ तक पहनावा का प्रश्न है पूर्वमध्यकालीन मूर्तियों के देखने से सभी बातें स्पष्ट हो जाती हैं तथा उनसे साहित्यिक उल्लेखों की पुष्टि होती है। पहनावा जाति के आचरण को बतलाता है। पुराने समय से ही भारत में धोती और चादर का प्रयोग किया जाता था। धोती को कमर में पट्टी से बाँध लेते थे और दाहिना कोना सामने लटका रहता था। स्त्रियों की साड़ियाँ घुटने तक पहुँच गयी थीं। उनके लिए चादर का प्रयोग कम हो गया था और चोली से ही वक्षस्थल को ढक लेती थीं। एलेफेन्टा की शिव प्रतिमाओं में, अजन्ता के चित्रों में तथा नालंदा के कांस्य या प्रस्तरमूर्तियों में चादर का सर्वथा अभाव दिखलाई पड़ता है । कलाकार प्राकृतिक ढंग से शारीरिक सुन्दरता को व्यक्त करना चाहते थे, इसलिये आवरण को हटाना आवश्यक समझा गया । एक दानपत्र में छत्र तथा उपानह का उल्लेख पाया जाता है जो दान में ब्राह्मण को मिला था। पूर्वमध्यकालीन मूर्तियों में छत्र को कम स्थान नहीं दिया गया था जो प्रशस्ति के उल्लेखों को पुष्ट करता है। उत्तरीय के स्थान पर कलाकारों ने आभूषणों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। देवप्रतिमा के मुकुट में नाना प्रकार के मूल्यवान प्रस्तर लगाए गए हैं। कर्ण फूल, हार, भुजदण्ड, करधनी, कंगन आदि गहने काम में लाए " जाते थे जिनकी स्थिति तत्कालीन मूर्तियों में पायी जाती है। पूर्वमध्य युग में आभूषण के कारण प्रतिमाओं के चादर का अभाव नहीं खटकता किन्तु वे शरीर को विभूषित करते हैं और नंगेपन को परखने नहीं देते। इसके अतिरिक्त शृंगार की बातें मूर्तियों से उपलब्ध होती हैं। स्त्रियों के शृंगारप्रियता को कलाकारों ने सजीव कर दिया है अनन्ता तथा वाध की चित्रों में स्त्रियों के शृंगारमय आकृतियों का अवलोकन किया जा सकता है । ११वीं सदी में निर्मित भुवनेश्वर की एक स्त्री प्रतिमा इस सम्बन्ध में अद्वितोय मानी जाती है । वहाँ की मूर्तियाँ सौन्दर्य

कला का सुन्दर उदाहरण उपस्थित करती हैं। दर्पण में -देखते हुए शृंगार में रत युवती की प्रतिमा अत्यन्त रमणीय है। स्त्रियों द्वारा कुमकुम लगाने की बात खजुराहो के लेख में भी उल्लिखित मिलती है।

सती तथा जौहर

स्मृतिग्रंथों में पति के साथ पत्नी के सहगमन की चर्चा मिलती है जिसे - सहमरण भी कहते हैं। पूर्व लेखों में स्त्रियों के सती होने की बात स्थान-स्थान पर मिलती है । चेदि लेख में ऐसा ही वर्णन मिलता है सती तथा जौहर कि गांगेयदेव की सौ स्त्रियां सती हो गयी थीं। पूर्वमध्ययुग में सती की प्रथा के उल्लेख के साथ पति के मृत्यु के दुखद समाचार सुन कर जल जाने की बातें भी सुनने में आती हैं। इसे अनुमरण का नाम दिया गया है। तत्कालीन इतिहास में वर्णन मिलता है कि मुसलमानों के द्वारा पराजित होने पर राजपूत रमणियाँ जल जाती थीं इसे जौहर का नाम दिया गया है । (ईश्वरी प्रसाद, मुसलमानों का इतिहास, १० ३२) जिसमें प्रतिष्ठा तथा पवित्रता की भावना निहित थी और राजपूत ललनाएँ सतीत्व की रक्षा करती रहीं। अन्य स्थानों के विवरण को ध्यान मे रख कर यह कहा जा सकता है कि मरने के तीन प्रकार थे। पहला जलकर मरना, पानी में डूब कर मरना तथा स्वाभाविक मृत्यु । राजपूत नारियों का जौहर तथा गांगेयदेव के साथ स्त्रियों के जल में डुब कर मरना इस युग की विशेष घटनाएँ हैं।

मेला तथा अमोद्प्रमोद

समाज में उत्सव मनाने तथा मेला संगठित करने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन है । धार्मिक अवसरों पर रथयात्रा का प्रबन्ध किया जाता था तथा समाज में विशिष्ट अवसरों पर संगीत तथा अभिनय से मनोरंजन मेला तथा किया करते थे।

पूर्वमध्यकालीन एक लेख में दीपावली के आमोद प्रमोद अवसर पर अभिनय करने का वर्णन मिलता है। (दियोत्सव दिने अभिनव निष्पन्न प्रेक्षा मध्यमण्डपे) चहमान लेख के संगीत के आयोजन की चर्चा मिलती है। स्थान स्थान पर पशु मेला होता था। इनके अतिरिक्त शतरंग का खेल आमोद का साधन था। उसमें हाथी तथा रथ का नाम आजकल नहीं मिलता किन्तु उनके स्थान पर ऊँट तथा किश्ती से काम लेते हैं। चर्यापाद में ऐसा ही शतरंग (वर्तमान शतरंज) का विवरण मिलता है। शतरंग को छोड़कर लोग जुआ भी खेला करते थे जिसपर कर (टैक्स) लगाने की बात परमार चामुण्डराय की प्रशस्ति में उल्लिखित है । इतना ही नहीं लोग शारीरिक स्वस्थता के लिए पानी का खेल, नटकार्य तथा जमनास्टिक में भाग लेते थे। सरकार की ओर से एक पदाधिकारी नियुक्त रहता था जो समाज में व्यायाम सम्बन्धी कार्यों का देखभाल करता था। इस तरह का वर्णन अनेक लेखों में मिलता है।

<u>अन्धविश्वास</u>

पूर्वमध्ययुग में विभिन्न धार्मिक मतों के कारण हठयोग और मंत्र-तंत्र का खूब प्रचार हो गया था। शाक्तमत के कारण तांत्रिक कार्य बढ़ गये थे। मंत्र के सहारे सफलता की आशा की जाती थी। लेखों में तो अन्धविश्वास यहां तक वर्णन मिलता है कि राजदरबार में फलित- ज्योतिष की गणना के लिए एक विद्वान नियुक्त किया जाता था। उस समय अधिक कार्य मंत्र के सहारे किए जाते थे । ताबीज पहनना, इष्टसिद्धि के लिए बलिदान, भूत डाकिनी पर विश्वास, दिक्पालों की पूजा विभिन्न रूप में होने लगी। तंत्रमंत्र के चमत्कार से स्त्रियाँ आकर्षित होती गयीं जो मठों में सिद्ध तथा भिक्षुओं के साथ अधिक रहने लगी। वह अन्धविश्वास का सिलसिला आज भी समाज में वैसा ही चल रहा है।

<u>व्यक्ति का आर्थिक जीवन</u>

यद्यपि पूर्वमध्ययुग में उत्तरी भारत की राजनीतिक स्थिति डांवाडोल रही किन्तु समाज में व्यक्तियों के आर्थिक जीवन पर उतना गहरा प्रभाव न पड़ा । इस युग के लेखों से प्रकट होता है कि प्रत्येक व्यक्ति का आर्थिक व्यक्ति किसी न किसी कार्य में लगा था। ब्राह्मण वर्ग जीवन के लोग जीविका के लिए ही कृषिकार्य करने लगे थे और अनेक राजाओं ने उन्हें भूमि जोतने के लिए दान में दी थी। मेले तथा बाजारों का वर्णन मिलता है जहाँ क्रय-विक्रय में अन्तरप्रांतीय सम्बन्ध बना रहा। दूसरे स्थान के व्यापारी भी कर दिया करते थे। कारखाने चलाने का भी वर्णन मिलता है। दानपत्रों की संख्या अनगिनत है जिनमें भूमिदान का वर्णन है तथा मन्दिरनिर्माण का उल्लेख पाया. जाता है। इससे प्रकट होता है कि लोगों की आर्थिक अवस्था गिरी न थी। हाँ, इस युग में भीख मांगने की प्रथा अधिक चल पड़ी थी। ब्रह्मचारी आचार्य के लिए भीख तो मांगता ही था. जैन तथा बौद्ध भिक्षुओं की संख्या अधिक बढ़ गयी थी जो गृहस्थों से भिक्षान लिया करते थे। सम्भवतः इसी समय से निन्दनीय भीख मांगने की कुत्रया का आरम्भ हो गया। यही कारण है कि तत्कालीन लेखों में सत्र (भिक्षागृह या सदावर्त) का नाम मिलता है। भिक्षुओं का अनुसरण कर ब्रह्मग भी मठ धीर होने लगे और भीख मांगना जीविका का साधन बना लिया। यह भी सम्भव है कि युद्ध में अगणित लोगों के मर जाने से उनके आश्रित भिक्षा मांगकर ही जीवन निर्वाह करते हों। इस दैन्य दशा सुधारने का अवसर नहीं था, इसलिए ग्राम-ग्राम से भीख माँगने की राजाज्ञा घोषित कर दी गई थी। इस युग के लेखों में भिक्षागृह का वर्णन मिलता है।

<u>समाज में व्यक्ति का आचरण</u>

जहां पर भिक्षान के अतिरिक्त रहने का भी स्थान मिल अ.ता था। जहां तक समाज में चरित्र की बात है भारतवासियों का चरित्र सदा से ही उज्ज्वल तथा प्रशंसनीय रहा है। विदेशियों ने भी उसकी प्रशंसा ही की है। पूर्वमध्यकाल में मुसलमान

यात्रियों ने भारतीय समाज में व्यक्ति ईमानदारी तथा न्याय का वर्णन किया है और सत्य का आचरण भाषग की विशेषता बतलाई है। अल इदरिसी का मत इस विषय में स्पष्ट है। विवेच्य युग में इस्लाम संस्कृति से सम्पर्क होने पर सामाजिक नियम परिवर्तित किए गए । यद्यपि बहुपत्नी वत तथा अनुलोम विवाह की प्रथाएं प्रचलित हो गई थीं किन्तु कामवासना की दृष्टि से अन्तर्जातीय विवाह करने पर वह व्यक्ति निन्दा का भागी होता -था। कलाकारों ने भी रतिशास्त्र की बातों को प्रस्तर पर खोदना आरम्भ किया था पर वह तंत्रयान तथा शाक्त मत का प्रभाव था। देवदासी की प्रथा भी इसका एक कारण मानी जा सकती है। सर्वत्र ही तांत्रिक आचार ने घर बना लिया था जिस कारण से पाल युगी तथा उड़ीसा के मन्दिरों पर खुदी प्रस्तर प्रतिमाएं नंगी दिखलाई गई हैं । मांस मदिरा के प्रयोग ने लोगों का स्तर निम्न कर दिया था। भोजन का प्रभाव आचरण पर अवश्य ही पड़ता है। यही कारण था कि उच्च आदर्श तथा सदाचार का स्तर नीचा हो गया था। १२वीं सदी के देवपारा लेख में विजयसेन नामक सेननरेश ने ग्राम की जलनाओं के अबोधपन तथा नगर के जीवन से अनभिज्ञता का परिचय कराया है। इतना होते हुए भी भारतीय नौजवान वीरता के लिए राजपट्ट (तगमा) प्राप्त करते थे। उसके मरने पर राजा की ओर से परिवार के लोगों को मासिक वृत्ति मिलती थी जिसे लेखों में 'मृत्युवृत्ति' कहा गया है

सातवीं सदी में अरबवालों ने सिन्ध को जीतकर मुल्तान तक अपना राज्य विस्तृत कर लिया था। कई शताब्दियों तक वे गुर्जर प्रतिहार राजाओं के डर से सिन्ध तथा मुल्तान में सीमित रहे। मुल्तान के हिन्दू मुसलमान प्रसिद्ध सूर्य मन्दिर का प्रबन्ध मुसलमानों के हाथ में था सम्पर्क और उपासकों द्वारा प्रदत्त धन उन्हीं के कोष में जाता था। जब कभी प्रतिहार राजा आक्रमण करना चाहते तो मुसलमान सूर्य मन्दिर को नष्ट कर देने का भय दिखाते रहे । धार्मिक भय के कारण हिन्दू नरेश पीछे चले आते थे। गुजर प्रतिहारों के बाद परिस्थिति बदल गयी। थोड़े ही दिनों में (१०वीं सदी के बाद) उत्तरी भारत पर -मुसलमान फैल गए। हिन्दुओं में साहस तथा राजनीतिक संगठन की कमी हो गई जिससे उन्हें अवसर मिल गया। इस परिस्थिति में मुसलमानों का भारतवासियों के सम्पर्क में आना स्वाभाविक था। लेखों में मुसलमानों के लिये तीन शब्दों का प्रयोग मिलता है--तुरुष्क, म्लेच्छ तथा मुल्ला।

स्मृतियों में विशेष कर म्लेच्छ मुसलमानों के लिये देवल या पराशर ने प्रयोग किया है। गहड़वाल राजा गोविन्दचन्द्र के लेख में तुरुष्क मुसलमानों के लिये प्रयुक्त किया गया है ।

१२वीं सदी के दानपत्र में जयचन्द्र द्वारा उन व्यक्तियों को दान में भूमि देने का वर्णन आता है जिनके पिता म्लेच्छों द्वारा युद्ध में मारे गए थे। मुसलमान पूरब की ओर बढ़ते ही गए और बंगाल तक पहुंच गए। राजा लक्ष्मणसेन ने पूर्वी बंगाल के मुसलमानों को मुला कह कर वर्णन किया है। भारतवासियों में राष्ट्रीय चेतना घटती गयी और देश पतन की ओर क्रमशः जाने लगा। हिन्दू राज्य की रक्षा के समय तुरुष्क दण्ड नामक कर भी लगाया जाता था। किन्तु हिन्दू हारते गए और पराजित होने पर लोग मुसलमान हो जाते थे।

इस युग की एक विशेषता यह है कि उस विकट तथा नई परिस्थिति में जनता को बचाने के लिए शुद्धि का विचार सामने रक्खा गया। देवल ने इस्लाम मत में दीक्षित हो जाने वाले व्यक्ति को भी शुद्ध करके हिन्दू धर्म में वापस लेने का विधान उपस्थित किया। देवल ने यहाँ तक कहा कि बलात्कार किए जाने पर भी चान्द्रायणवत से शुद्धि हो जाती है । वृहत् यम इसी के समर्थक हैं। उनका कथन है कि म्लेच्छों द्वारा गुलाम बना लेने पर यदि हिन्दू गो-हत्या भी करे तो भी प्रायश्चित्त करा कर ब्राह्मग धर्म में ले लेना चाहिए । स्मृतियों के कथन की पुष्टि मुसलमान लेखक अल विदोरी के वर्णन से होती है कि ९वीं सदी में विभिन्न प्रानों से मुसलमानों को बलपूर्वक हट जाना पड़ा और बहुत से मूर्तिपूजक हो गए । तात्पर्य यह है कि अधिक संख्या में मुसलमान शुद्ध किए गए। नवास शाह ने भी पुरोहित के सलाह से इस्लाम मत को छोड़ दिया । कालान्तर में ब्राह्मण वर्ग इसका विरोधी हो गया । ११वीं सदी के समीप अन्तर्जातीय विवाह और भोजन का अन्त हो रहा था, इस कारण शुद्ध किए व्यक्तियों के सामाजिक स्थिति का प्रश्न खड़ा हो गया। फलस्वरूप शुद्धि को प्रोत्साहन न मिल पाया और यह कार्य क्रमशः बन्द हो गया।